उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

बनाम

जसवीर सिंह व अन्य

(सिविल अपील सं. 10061 वर्ष 2010)

26 नवंबर, 2010

[आर. वी. रवींद्रन और ए. के. पटनायक, जे.जे.]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 226 – रिट याचिका- दायरा

वर्ष 1981 में अधिग्रहीत भूमि की क्षतिपूर्ति में वृद्धि के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील लंबित – वर्ष 2005 में दिनांक 18.08.1981 की अधिग्रहण अधिसूचना को अभिखण्डित करने के लिए तथा पश्चातवर्ती नवीन अधिसूचना के आधार पर क्षतिपूर्ति का निर्धारण करने के लिए रिट याचिका दायर की गई- उच्च न्यायालय ने सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों को न्यायालय में पेश होने के लिए कहा तथा न्यायालय के बाहर प्रकरण का निस्तारण करने के निर्देश दिये- आगामी तारीख पर, उच्च न्यायालय ने अधिकारियों से भू-स्वामियों को मिलने वाली क्षतिपूर्ति में होने वाले विलम्ब पर ब्याज की वसूली करने के निर्देश दिये- निर्धारण: क्षतिपूर्ति का परिमाण का निर्धारण अपीलों के द्वारा किया जायेगा रिट याचिका द्वारा नहीं- क्योंकि रिट याचिका और अपीलें उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि क्षतिपूर्ति राशि भुगतान में राज्य सरकार या उसके अधिकारियों की ओर से विलम्ब हुआ- उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा राज्य सरकार के विभिन्न वरिष्ठ अधिकारियों को उपस्थित होने व

18.08.1981 की अधिसूचना के संदर्भ के स्थान पर वर्तमान बाजार मूल्य के आधार पर क्षतिपूर्ति राशि के लिए समझौते पर सहमत करवाने के लिए आभासीय धमकी के माध्यम से अपनाई गई प्रक्रिया व विधि अनुचित है तथा अनुकरणीय नहीं है- उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया गया- उच्च न्यायालय पूर्वाग्रह या पक्षपात की किसी भी धारणा से बचते हुए अपीलों का शीघ्र निस्तारण करेगा, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश मामलें को किसी अन्य पीठ को सौपेंगे। अभ्यास एवं प्रक्रिया - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1897- प्रशासनिक विधि - पूर्वाग्रह **अनुच्छेद 226 - रिट याचिका** न्यायालय में वरिष्ठ अधिकारियों की व्यक्तिगत उपस्थिति - निर्धारण: यह चिंता का विषय है कि उच्च न्यायालयों के कुछ न्यायाधीशों के बीच नियमित रूप से ओर अक्सर सचिवों के स्तर के अधिकारियों की और सरकार और स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा उनके सुझावों का अनुपालन न करने या महत्वहीन स्पष्टीकरण मांगने के लिए व्यक्तिगत उपस्थिति की अपेक्षा किये जाने की प्रवृति में वृद्धि हो रही है। रिट याचिकाओं में यह सामान्य प्रक्रिया है कि पक्षकारों को उनके अधिवक्ता के माध्यम से सुना जाता है, जिन्हें प्रकरणों में निर्देशित किया गया है और याचिकाओं पर दलीलों/ शपथपत्रों / साक्ष्यों/ दस्तावेजों/ तथ्यों की जांच कर निर्णय लिया जाता है- सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों की न्यायालय में उपस्थिति की अपेक्षा अपवादिक तथा विरल मामलों में अंतिम विकल्प होना चाहिए - हस्तगत प्रकरण में, उच्च न्यायालय के सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों को न्यायालय में उपस्थित होने सम्बन्धी आदेश अनुचित थे – अभ्यास एवं प्रक्रिया – न्यायिक औचित्य

न्यायप्रशासन:

विवादों का निस्तारण- न्यायालयों द्वारा सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों की व्यक्तिगत उपस्थिति तथा विवाद का न्यायालय के बाहर निस्तारण करने

पर जोर दिया जाता है - निर्धारण: जहां राज्य की एक निश्चित नीति है या एक विशिष्ठ रूख अपनाया है और उसे हलफनामे के माध्यम से स्पष्ट रूप से विवेचन किया है, न्यायालयों को समझौते के लिए सुझावों या प्रस्तावों के माध्यम से एक विपरित दृष्टिकोण थोपने का प्रयास नहीं करना चाहिए- एक न्यायालय नीतियों की संदर्भित सीमाओं में रहते हुए कारण सहित आदेशों द्वारा अपना द़ृष्टिकोण प्रकट कर सकता है ओर निर्देश जारी कर सकता है लेकिन किसी अवांछित पक्ष को अपने द्वारा तय की गई शर्तों के आधार पर समझौता करने के लिए अपने विचारों को थोपने का प्रयास नहीं करना चाहि– – अभ्यास एवं प्रक्रिया भू-स्वामियों द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 की धारा 4 के तहत दिनांक 18.08.1981 को जारी की गई अधिसूचना की शर्तों के अधीन उनकी अधिग्रहीत की गई भूमियों की बढ़ी हुई क्षतिपूर्ति राशि के लिए कि गई अपीलें उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थी। वर्ष 2005 में भू-स्वामियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका राज्य सरकार को अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत जारी अधिसूचना दिनांक 18.08.1981 तथा घोषणा दिनांक 14.11.1981 को अपास्त करते हुए नई अधिसूचना जारी करने के लिए निर्देश देने हेतु पेश की गई, और अंतिम अधिनिर्णय की दिनांक को भूमि के बाजार मूल्य को तय करने के लिए एक नई अधिसूचना जारी की जाये जो दिनांक 18.08.1981 की अधिसूचना से संदर्भित नहीं हो। रिट याचिका में उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने प्रधान सचिव सार्वजनिक निर्माण विभाग को न्यायालय में प्रस्तुत होने तथा राज्य प्राधिकारियों से न्यायालय के बाहर समझौता करने का जोर देते हुए आदेश पारित किया। राज्य सरकार का रूख था कि जिला मजिस्ट्रेट व कमीश्नर के प्रतिवेदन को स्वीकार नहीं किया गया था क्योंकि वे धारा 4 के अधीन दिनांक 18.08.1981 को जारी की गई अधिसूचना को अनदेखा करते हुए दिनांक 25.09.2008 के विक्रय विलेख के आधार पर दर पर पहुंचे है।

अन्ततः उच्च न्यायालय ने प्रधान सचिव (वित्त) तथा प्रधान सचिव (राजस्व) को निर्धारित तिथि पर न्यायालय में पेश होने का और क्यों ना देरी से भुगतान किये जाने के आधार पर 9 प्रतिशत की दर से ब्याज लगाया जाये और उनके वेतन से 50 प्रतिशत की सीमा तक वसूली की जाये ऐसा आदेश पारित किया। व्यथित होकर राज्य सरकार ने अपील प्रस्तुत की।

न्यायालय ने अपील को अनुमति देते हुये अभिनिर्धारित किया

1. तथ्य यह है कि क्षतिपूर्ति में वृद्धि से सम्बन्धित मुद्दा जो इस न्यायालय के रिमाण्ड आदेश की पालना में अपीलों में उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, विवादित नहीं है। क्षतिपूर्ति के परिमाण को उन अपीलों के माध्यम से तय किया जायेगा ना कि रिट याचिकाओं के द्वारा । आज दिनांक तक (संदर्भित न्यायालय द्वारा पारित पंचाट के अलावा) न तो अपीलों में ना रिट याचिकाओं में प्रत्यर्थीगण के पक्ष में लंबित राशि का निर्धारण करने का आदेश किया गया है। प्रत्यर्थीगण की रिट याचिका में यह विवाद है और प्रार्थना की गई है कि अधिग्रहणों के सम्बन्ध में नवीन अधिसूचना जारी की जानी चाहिए तथा क्षतिपूर्ति का निर्धारण उस नवीन अधिसूचना की दिनांक को मौजूदा मूल्यों के संदर्भ में किया जाना चाहिए ना कि दिनांक 18.08.1981 की अधिसूचना पर, यह ऐसा मामला है जिसपर रिट याचिका में निर्णय लिया जाना शेष है। क्योंकि रिट याचिका तथा अपीलें दोनों ही लंबित है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य सरकार को या उसके अधिकारियों की ओर से क्षतिपूर्ति के प्रभावी भुगतान में विलंब किया गया है। यदि उच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण था कि मामले में अनावश्यक रूप से देरी हो रही थी या भू-स्वामियों के पक्ष में कोई अन्याय हो रहा था तो मामलें को कई दिनों तक सूचीबद्ध करने के स्थान पर तथा राज्य

सरकार के विभिन्न वरिष्ठ अधिकारियों को उपस्थित होने या दिनांक 18.08.1981 की अधिसूचना के स्थान पर वर्तमान बाजार मूल्य पर क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के समझौते पर सहमत होने के लिए आभासीय रूप से धमकाने के स्थान पर, रिट याचिका पर अंतिम रूप से सुनवाई करते हुए गुण-दोष के आधार पर निर्णय किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया तथा विधि अनुचित थी तथा अनुकरण किये जाने योग्य नहीं है। [पैरा 6] [955-जी एच; 956-ए-ई]

2.1 यह चिंता का विषय है कि उच्च न्यायालयों के कुछ न्यायाधीशों के बीच नियमित रूप से ओर अक्सर सचिवों के स्तर के अधिकारियों की और सरकार और स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा उनके सुझावों का अनुपालन न करने या महत्वहीन स्पष्टीकरण मांगने के लिए व्यक्तिगत उपस्थिति की अपेक्षा किये जाने की प्रवृति में वृद्धि हो रही है। जितनी अधिक शक्ति होगी उसका प्रयोग करने में उतना ही अधिक उत्तरदायित्व होना चाहिए। भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद 226 में उच्च न्यायालय की नि:संदेह व्यापक शक्तिया है। यह मूल अधिकारों के प्रवर्तन या किसी अन्य उद्देश्य के लिए किसी भी व्यक्ति या प्राधिकारी या सरकार को निर्देश, आदेश, परमादेश जारी कर सकता है। उच्च न्यायालय की किसी भी अधिकारी को न्यायालय में न्याय तक पहुंच सुनिश्चित करने या समुचित निर्णय लेने के लिए सहयोग करने हेतु व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रखने की शक्ति है किन्तु ऐसी शक्तियों के प्रयोग के लिए निर्धारित मापदण्ड तथा प्रक्रियाएं है। रिट याचिकाओं में यह सामान्य प्रक्रिया है कि पक्षकारों को उनके अधिवक्ता के माध्यम से सुना जाता है, जिन्हें प्रकरणों में निर्देशित किया गया है और याचिकाओं पर दलीलों/ शपथपत्रों / साक्ष्यों/ दस्तावेजों/ तथ्यों की जांच कर निर्णय लिया जाता है जहां न्यायालय उसके

द्वारा जारी किये गये निर्देशों की पालना के सम्बन्ध में किसी सूचना को चाहता है वहां सुसंगत दस्तावेजों के साथ प्रस्तुत शपथपत्रों या प्रतिवेदनों के द्वारा ऐसा किया जा सकता है। सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों की न्यायालय में उपस्थिति की अपेक्षा अपवादिक तथा विरल मामलों में अंतिम विकल्प होना चाहिए, ऐसी उपस्थित वहा नितांत आवश्यक है जहां जटिल नीति या तकनीकी मुद्दा हो तथा अधिवक्ता उसकी उचित व्याख्या करने में असमर्थ हो। न्यायालय अधिकारियों की ऐसी व्यक्तिगत उपस्थ्िाति की अपेक्षा वहां भी कर सकता है यह पाया जाता है कि किसी अधिकारी ने जानबूझ कर और गलत उद्देश्यों से न्यायालय द्वारा वांछित किसी विशिष्ट सुचना को रोक लिया है जिसे वह विधिक रूप से प्रदान करने के लिए बाध्य है या सही स्थिति को छुपाकर गलत तरह से प्रस्तुत किया गया है। [पैरा 7-8] [956-एफ-एच; 957 – ए -एफ]

3. जहां राज्य की एक निश्चित नीति है या एक विशिष्ठ रूख अपनाया है और उसे हलफनामे के माध्यम से स्पष्ट रूप से विवेचन किया है, न्यायालयों को समझौते के लिए सुझावों या प्रस्तावों के माध्यम से एक विपरित दृष्टिकोण थोपने का प्रयास नहीं करना चाहिए। एक न्यायालय नीतियों की संदर्भित सीमाओं में रहते हुए कारण सहित आदेशों द्वारा अपना द्रष्टिकोण प्रकट कर सकता है ओर निर्देश जारी कर सकता है लेकिन किसी अवांछित पक्ष को अपने द्वारा तय की गई शर्तों के आधार पर समझौता करने के लिए अपने विचारों को थोपने का प्रयास नहीं करना चाहिए। समस्त अवसरों पर न्यायालयों को वरिष्ठ अधिकारियों को व्यक्तिगत पक्षकारों की शिकायतों का निपटारा करने के लिए जिनके प्रति न्यायालय को सहानुभूति है उपस्थित होने का निर्देश देने से बचना चाहिए। न्यायालय को यह अहसास होना चाहिए कि एक विशेष रूख, राज्य की अपनी प्राथमिकताओं, नीतियों , सीमाओं का परिणाम होता है। सरकार के वरिष्ठ अधिकारी राज्य

प्रशासन के प्रभारी होते है और उनकी अपनी व्यस्तताएं होती है। न्यायालय को उन्हें सभी तथा विविध मामलों में बुलाने से बचना चाहिए क्योंकि यह न्यायिक शक्ति का दुरूपयोग होगा। न्यायालय को ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय उनका उल्लंघन करने से बचना चाहिए। यह हो सकता है कि न्यायाधीश सद्भावना पूर्वक यह विश्वास करता हो कि वरिष्ठ अधिकारी की उपस्थिति मामलों के शीघ्र और प्रभावपूर्ण न्याय तक पहुंचने के लिए आवश्यक हो किन्तु न्यायाधीश का उद्देश्य पवित्र तथा सद्भाविक होना पर्याप्त नहीं है। उस उद्देश्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया न्यायिक औचित्य द्वारा निर्धारित मापदण्डों से परे जाकर नहीं होनी चाहिए यद्यपि न्यायसंगत एवं उचित होनी चाहिए । [पैरा 9, 10] [957 – एफ – एच; 958 – ए- सी- एफ- जी]

गुजरात राज्य बनाम तुराबली गुलाम हुसैन हिरानी- 2007(10) सर्वोच्च न्यायालय प्रतिवेदन 531 2007(14) सर्वोच्च न्यायालय प्रतिवेदन 94(11)- पर आधारित

4. तथ्यों व परिस्थितियों के आधार पर, अधिग्रहण को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर सुनवाई के दौरान उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा जारी अंतरिम निर्देश, जिसमें प्रधान सचिव (सार्वजनिक निर्माण विभाग), प्रधान सचिव(वित्त) या प्रधान सचिव (राजस्व) को अलग-अलग तिथियों पर न्यायालय में उपस्थित होने का निर्देश अनुचित है। उच्च न्यायालय के दोषपूर्ण निर्देश को अपास्त किया गया । उच्च न्यायालय , उसके समक्ष लंबित अपीलों का शीघ्रता से गुण-दोषों के आधार पर निस्तारण करेगा। पूर्वाग्रह या पक्षपात की किसी भी धारणा से बचते हुए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश मामलें को किसी अन्य पीठ को सौपेंगे। [पैरा 12,13] [959-एफ – एच, 960 – ए- बी]

संदर्भित विधि

2007(10) एससीआर 531 पर आधारित पैरा 11

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : सिविल अपील नं. 10061 वर्ष 2010 उत्तर प्रदेश राज्य व अन्यबनाम जसवीर सिंह व अन्य

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 2005 के रिट-सी नंबर 77449 में पारित निर्णय और आदेश के दिनांक 22.09.2010 से

शैल कुमार द्विवेदी, प्रदीप मीश्रा, सुरज सिंह, मनोज कुमार द्विवेदी - अपीलार्थी की ओर से

अशोक कुमार सिंह- प्रत्यर्थी की ओर से

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. वी. रवीन्द्रन द्वारा पारित किया गया

1.अनुमति दी गई । सुना गया।

1. भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 की धारा 4(1) और धारा 6 के तहत जारी अधिसूचना दिनांक 18.08.1981 तथा 14.11.1981 के तहत प्रत्यर्थीगण की भूमियों के अधिग्रहण के सम्बन्ध में भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा 12,000/- रूपये प्रति एकड़ क्षतिपूर्ति की राशि की पेशकश की गई जिसे संदर्भ न्यायालय द्वारा बढ़ाकर 17,000/- रूपये प्रति एकड़ तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा 30,000/- रूपये प्रति एकड़ कर दिया गया। प्रत्यर्थीगण द्वारा आगे की गई अपील में इस न्यायालय ने दिनांक 12.09.2005 के आदेश द्वारा उच्च न्यायालय के दिनांक 29.01.2004 के आदेश को अपास्त कर दिया तथा उच्च न्यायालय को मामलें पर विधि अनुसार परिमाण और वैधानिक लाभों के संदर्भ में गुण-दोषों के आधार पर नवीन निर्णय पारित करने हेतु प्रतिप्रेषित किया । इस न्यायालय ने यह भी पाया कि अपीलें पुरानी है इसलिए उच्च न्यायालय को अपीलों के शीघ्र निस्तारण के प्रयास करने होंगे। हमें सूचित किया गया है कि अपीलें(एफ ए

1993 क्रम 880 और एफ ए 1998 क्रम 401) अभी भी उच्च न्यायालय में विचाराधीन है।

1. इसके बाद प्रत्यर्थीगण ने एक रिट याचिका संख्या 77449/2005 दायर की, जिसमें धारा 4 के तहत दिनांक 18.8.1981 और 14.11.1981 की अधिसूचनाओं को रद्द करने के बाद अधिनियम की धारा 4 और 6 के तहत एक नई अधिसूचना जारी करने का निर्देश देने की मांग की गई। और इस अधिनियम के 6 . उन्होंने अपीलकर्ता को कब्जा लेने की तारीख (19.9.1986) से धारा 4(1) के तहत नई अधिसूचना जारी होने की तारीख तक, पहले से दिए गए पंचाट के तहत राशि को समायोजित करने के बाद, ब्याज के साथ मध्यवर्ती लाभ और क्षति का भुगतान करने का निर्देश देने की भी मांग की। इसके बाद प्रत्यर्थीगण ने प्रार्थनाओं में संशोधन के लिए दो आवेदन दायर किए और एक नई अधिसूचना के बाद अंतिम पंचाट की तारीख के अनुसार बाजार मूल्य के निर्धारण के लिए निर्देश देने की मांग की, न कि दिनांक 18.8.1991 की अधिसूचना के संदर्भ में।

1. उक्त रिट कार्यवाही में, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने स्पष्ट रूप से राज्य सरकार को सुझाव दिया कि उसे प्रत्यर्थीगण के दावों का निपटारा करना चाहिए। राज्य सरकार की ओर से विरोध हुआ, इसके चलते उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेशों की श्रृंखला जारी की गई। हम उस पृष्ठभूमि को समझने के लिए उनका उल्लेख कर सकते हैं जिसमें विवादित आदेश दिया गया था।

(4.1) हम 19.5.2010 को जारी किए गए निर्देशों के आधार शुरुआत कर सकते हैं।

> "याचिकाकर्ताओं की शिकायत यह है कि याचिकाकर्ताओं की भूमि पर प्रतिवादी प्राधिकरण ने बिना विधिक प्राधिकारके कब्जा कर लिया है।

इस न्यायालय ने इस मामले को न्यायालय के बाहर निपटाने का निर्देश दिया था। न्यायालय के आदेश के अनुपालन में राज्य सरकार ने दो समितियां गठित कीं, जिनमें से पहली समिति की अध्यक्षता संबंधित जिले के कलेक्टर ने की, जिन्होंने दर निर्धारित कर अपनी रिपोर्ट दी और दर की अनुशंसा की, जो याचिकाकर्ता को स्वीकार्य थी। संबंधित संभाग के संभागीय आयुक्त की अध्यक्षता वाली दूसरी समिति ने भी अपनी रिपोर्ट दी और एक दर की सिफारिश की, जो याचिकाकर्ता को भी स्वीकार्य थी।इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि दोनों समितियों द्वारा अनुशंसित दर याचिकाकर्ता को स्वीकार्य है।

हालाँकि, हम प्रत्यर्थी -राज्य सरकार को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर दोनों समितियों द्वारा अनुशंसित रिपोर्ट पर निर्णय लेने का निर्देश देते हैं।"

(4.2) जब मामला 05.07.2010 को सामने आया, तो उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश दिया:

"सूची/प्रस्तुत हो 12.07.2010 उस दिन प्रमुख सचिव, सार्वजनिक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार लखनऊ को यह बताना होगा कि कलेक्टर और मंडलायुक्त द्वारा दी गई दरों को स्वीकार करके हमारे आदेश दिनांक 19.05.2010 का अनुपालन क्यों नहीं किया गया है।उस तारीख तक उनके द्वारा एक हलफनामा भी दाखिल किया जाएगा।"

(जोर दिया गया)

उक्त आदेश के अनुपालन में, प्रमुख सचिव, सार्वजनिक निर्माण विभाग की ओर से एक हलफनामा दायर किया गया था जिसमें बताया गया था कि

जिला मजिस्ट्रेट और आयुक्त ने इस तथ्य को नजरअंदाज करते हुए दिनांक 25.09.2008 के विक्रय पत्र के आधार पर दर तय की थी कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना 18.08.1981 को जारी हो चुकी है, उक्त रिपोर्ट सरकार द्वारा स्वीकार नहीं की गई थी।यह भी कहा गया कि राज्य सरकार ने भूमि के लिए 30,000/- रुपये प्रति एकड़ की दर से मुआवजा और ब्याज सहित कुल 10,99,853-75 रुपये का भुगतान करने का निर्णय लिया है, और इसकी सूचना प्रत्यर्थीगण को दे दी गई है।यह ध्यान योग्य है कि जिला दंडाधिकारी ने जिला भूमि अधिग्रहण पदाधिकारी की रिपोर्ट दिनांक 17.02.2009 को अनुमोदित करते हुए बकाया राशि 29,86,99,086/- (84,74,760/- प्रति एकड़ की दर से निकाली थी, 240 वर्ग मीटर के एक छोटे भूखंड के संबंध में 25.9.2008 के विक्रय पत्र के आधार पर)।

(4.3) जब मामला 12.07.2010 को सामने आया, तो उच्च न्यायालय ने श्री रवींद्र सिंह, प्रमुख सचिव, सार्वजनिकनिर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ की उपस्थिति दर्ज की तथा उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दी और मामले को बीस दिनों के लिए स्थगित कर दिया।जब मामला 05.08.2010 को सामने आया, तो उच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आदेश दिया गया:

> "याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.के.एस. चौधरी और महाधिवक्ता को सुनने के बाद, (यह निर्देशित किया जाता है कि सरकार दो सप्ताह के(भीतर एक हलफनामा दायर करेगी कि कलेक्टर द्वारा अनुशंसित दर को क्यों स्वीकार नहीं किया गया है।
>
> आगे की सुनवाई के लिए दो सप्ताह के बाद सूचीबद्ध"

(4.4) इसके बाद अपीलार्थी ने दिनांक 19.08.2010 को एक हलफनामा दायर किया जिसमें कहा गया कि मामले की फिर से जांच की गई और पाया गया कि जिला मजिस्ट्रेट के साथ-साथ आयुक्त की सिफारिशें राज्य सरकार पर बाध्यकारी नहीं थीं;इस न्यायालय ने (स्वर्ण लता बनाम हरियाणा राज्य - (2010) 4 एससीसी 532 में) माना है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 और धारा 6 के तहत अधिसूचनाओं को चुनौती देने वाली एक रिट याचिका कई वर्षों के बीत जाने के बाद सुनवाई योग्य नहीं थी,और इसलिए रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य है।मामला 30.08.2010 को फिर से सामने आया और खंडपीठ ने उक्त हलफनामे पर गौर किया और महाधिवक्ता से 07.09.2010 को अगली सुनवाई पर उपलब्ध रहने का अनुरोध किया। जब मामला 22.09.2010 को सामने आया, तो खंडपीठ ने विवादित आदेश दिया, जो निम्न है:

> "उभयपक्षों केअधिवक्ता को सुनने के बाद, हम उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ के प्रमुख सचिव (वित्त) और प्रमुख सचिव (राजस्व) को निर्देश देते हैं इस मामले में निर्धारित अगली तारीख पर इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर कारण दर्शित करें कि उनके कारण हुए विलंबित भुगतान पर 9% की दर से ब्याज क्यों नहीं लिया जाए और उसकी वसूली क्यों न उनके व्यक्तिगत वेतन की 50% तक की सीमा से की जाये।
>
> इस मामले को अगले आदेश सुनवाई के लिए 20.10.2010 को सूचीबद्ध करें।इस आदेश की प्रति कल तक फैक्स के माध्यम से प्रमुख सचिव (वित्त) एवं प्रमुख सचिव (राजस्व) उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ को भेजी जाये।
>
> (जोर दिया गय)

1.उक्त आदेश दिनांक 22.09.2010 से व्यक्ति होकर जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार के प्रमुख सचिव (राजस्व) और प्रमुख सचिव (वित्त) को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया और कहा किक्यों ना 9% की दर से प्रति वर्ष ब्याज लगाया जाए और उनके द्वारा कथित रूप से विलंबित भुगतान पर 50% की सीमा तक उनके व्यक्तिगत वेतन से वसूली की जाये, राज्य ने निम्नलिखित प्रश्न उठाते हुए विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से यह अपील दायर की है:

(अ) क्या उच्च न्यायालय भूमि अधिग्रहण को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर सुनवाई करते हुए राज्य सरकार को न्यायालय के बाहर मामले को निपटाने के लिए मजबुर कर सकता है ?

(ब) क्या उच्च न्यायालय द्वारा राज्य सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों को बुलाकर मामले को निपटाने का निर्देश देना उचित था , जब प्रतिवादियों द्वारा दायर रिट याचिका का राज्य सरकार द्वारा विरोध किया जा रहा है यह तर्क देकर कि रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं थी क्योंकि इसमें अधिनियम की धारा 4 और धारा 6 के तहत अधिसूचना जारी होने के 24 साल बाद और कब्जा लेने के 19 साल बाद भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही को चुनौती दी गई थी ?

(स) क्या राज्य सरकार के सचिव स्तर के वरिष्ठ अधिकारियों को बार –बार न्यायालय द्वारा उपस्थिति होने का निर्देश देना उचित था, जब सरकार ने मामले को निपटाने से इनकार कर दिया था, और उन पर धमकी देकर ब्याज की राशि उनके वेतन से वसूल करने के आधार पर विवादित दावे को निपटाने का दबाव दिया ?

6. यह तथ्य कि क्षतिपूर्ति में वृद्धि से संबंधित मुद्दा इस न्यायालय द्वारा रिमांड के आदेश के अनुसरण में उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में लंबित है, विवादित नहीं है।क्षतिपूर्ति की मात्रा उन अपीलों में तय की जानी

होगी न कि रिट याचिका में। नियत दिनांक तक, अपील या रिट याचिका में प्रत्यर्थीगण को देय किसी भी राशि (संदर्भ न्यायालय द्वारा दी गई राशि के अलावा) का निर्धारण करने का कोई आदेश नहीं है। प्रत्यर्थीगण का तर्क और प्रार्थना है कि अधिग्रहण के संबंध में नई अधिसूचनाएं जारी की जानी चाहिए और क्षतिपूर्ति ऐसी नई अधिसूचना की तारीख के अनुसार वर्तमान दरों के संदर्भ में निर्धारित किया जाना चाहिए, न कि 18.08.1981 को। यह मामला जिस पर अभी रिट याचिका पर निर्णय होना बाकी है। चूंकि रिट याचिका और अपील दोनों लंबित हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मुआवजे के भुगतान में राज्य सरकार या उसके अधिकारियों की ओर से कोई देरी हुई है। वर्तमान में देरी वास्तव में उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित मामलों के कारण है। यदि उच्च न्यायालय का विचार था कि मामले में अनावश्यक रूप से देरी हो रही है, या भूमि मालिकों के साथ कोई अन्याय हुआ है , तो राज्य सरकार के विभिन्न वरिष्ठ अधिकारियों को उपस्थित होने के लिए और वस्तुतः उन्हें 18.08.1981 के संदर्भ के बजाय वर्तमान बाजार मूल्य पर क्षतिपूर्ति देकर समझौते के लिए सहमत होने के लिए धमकाने के स्थान पर उसे अंततः रिट याचिका पर सुनवाई करनी चाहिए थी और मामले को कई पेशियों पर सूचीबद्ध करने के बजाय गुणदोष के आधार पर विवाद का फैसला करना चाहिए था। उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया और पद्धति अनुचित है और अनुकरणीय नहीं है।

6. यह चिंता का विषय है कि उच्च न्यायालयों के कुछ न्यायाधीशों के बीच नियमित रूप से ओर अक्सर सचिवों के स्तर के अधिकारियों की और सरकार और स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारियों के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा उनके सुझावों का अनुपालन न करने या महत्वहीन स्पष्टीकरण मांगने के लिए व्यक्तिगत उपस्थिति की अपेक्षा किये जाने की प्रवृति में वृद्धि हो रही है। भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद 226 में उच्च न्यायालय की

नि:संदेह व्यापक शक्तिया है। यह मूल अधिकारों के प्रवर्तन या किसी अन्य उद्देश्य के लिए किसी भी व्यक्ति या प्राधिकारी या सरकार को निर्देश, आदेश, परमादेश जारी कर सकता है। उच्च न्यायालय की किसी भी अधिकारी को न्यायालय में न्याय तक पहुंच सुनिश्चित करने या समुचित निर्णय लेने के लिए सहयोग करने हेतु व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रखने की शक्ति है किन्तु ऐसी शक्तियों के प्रयोग के लिए निर्धारित मापदण्ड तथा प्रक्रियाएं है।

6. इस न्यायालय ने बार-बार अनुभव किया है कि न्यायालयों की वास्तविक शक्ति डिक्री और आदेश पारित करने में नहीं है, न ही अपराधियों और अवमाननाकर्ताओं को दंडित करने में है, न ही वरिष्ठ अधिकारियों को उपस्थिति के लिए बुलाने में है, बल्कि आम आदमी के विश्वास, आस्था और विश्वास में है। इस तरह के विश्वास और आत्मविश्वास को अनावश्यक और अनुचित प्रदर्शन या शक्ति के प्रयोग से ख़त्म नहीं किया जाना चाहिए। शक्ति जितनी अधिक होगी, उस शक्ति का प्रयोग करने में उत्तरदायित्व भी उतना ही अधिक होना चाहिए। रिट याचिकाओं में सामान्य प्रक्रिया यह है कि पक्षों को उनके अधिवक्ता के माध्यम से सुना जाए जिन्हें मामले में निर्देश दिया गया है, और दलीलों/शपथपत्र/साक्ष्य/दस्तावेजों/सामग्री की जांच करके उन पर निर्णय लिया जाता है। जहां न्यायालय अपने किसी निर्देश के अनुपालन के बारे में कोई जानकारी मांगता है, उसे प्रासंगिक दस्तावेजों द्वारा समर्थित हलफनामों या प्रतिवेदनों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। न्यायालय में सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों की उपस्थिति की आवश्यकता अंतिम उपाय के रूप में होनी चाहिए, विरल और अपवादिक मामलों में, जहां ऐसी उपस्थिति बिल्कुल आवश्यक है, उदाहरण के लिए, जहां जटिल नीति या तकनीकी मुद्दों को समझाने में सहायता लेना आवश्यक है जिसकी अधिवक्ता द्वारा उचित प्रकार से व्याख्या नहीं की जा सकती हो। न्यायालय को अधिकारियों की व्यक्तिगत उपस्थिति की भी आवश्यकता हो सकती है, जहां उसे पता चलता

है कि कोई अधिकारी जानबूझकर या गलत इरादों के साथ अदालत द्वारा अपेक्षित किसी विशिष्ट जानकारी को रोक रहा है, जिसे प्रदान करने के लिए वह कानूनी रूप से बाध्य है या उसने सही स्थिति को गलत तरीके से प्रस्तुत किया है या दबाया है।

7. जहां राज्य की एक निश्चित नीति है या एक विशिष्ट रुख अपनाया गया है और उसे हलफनामे के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझाया गया है, न्यायालय को सुझावों या समाधान के प्रस्तावों के माध्यम से एक विपरीत दृष्टिकोण लागू करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। नीतिगत मामलों में हस्तक्षेप के संबंध में सीमाओं के अधीन, एक न्यायालय निश्चित रूप से अपने विचार व्यक्त कर सकती है और अपने तर्कसंगत आदेशों के माध्यम से निर्देश जारी कर सकती है। लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए और वास्तव में, वह किसी अनिच्छुक पक्ष को उसके द्वारा सुझाई गई शर्तों पर समझौता करने के लिए कहकर अपने विचार थोपने का प्रयास नहीं कर सकता है। किसी भी स्थिति में न्यायालयों को उन व्यक्तिगत वादियों की शिकायतों को निपटाने के लिए वरिष्ठ अधिकारियों को न्यायालय में उपस्थित रहने का निर्देश देने से बचना चाहिए जिनके प्रति न्यायालय को सहानुभूति हो सकती है। न्यायालय को यह अहसास होना चाहिए कि राज्य की अपनी प्राथमिकताएं, नीतियां और सीमाएं हैं जिनके परिणामस्वरूप एक विशेष रुख हो सकता है। केवल इसलिए कि न्यायालय को ऐसा रुख पसंद नहीं है, वह वरिष्ठ अधिकारियों को बार-बार न्यायालय में नहीं बुला सकती या कारण बताओ नोटिस जारी नहीं कर सकती। सरकार के वरिष्ठ अधिकारी राज्य के प्रशासन के प्रभारी होते हैं, उनकी अपनी व्यस्तताएं होती है। न्यायालय को सभी और विविध मामलों में उन्हें बुलाने से बचना चाहिए, क्योंकि यह न्यायिक

शक्ति का दुरुपयोग होगा। न्यायालयों को शक्ति के प्रयोग में ऐसे उल्लंघनों से बचना चाहिए। हमारी उपरोक्त टिप्पणियाँ निश्चित रूप से अवमानना क्षेत्राधिकार में अवमाननाकर्ताओं को बुलाने पर लागू नहीं होती हैं।

7. हमने उपरोक्त टिप्पणियाँ अनिच्छा से की हैं। हमारी टिप्पणियों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों के असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग को प्रतिबंधित या सीमित करने के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। इन टिप्पणियों का उद्देश्य न्यायालयों द्वारा स्व-नियमन और आत्म-प्रतिबंध के लिए मार्गदर्शन करना है। यह आवश्यक हो गया है क्योंकि हमने देखा है कि पीठ के विद्वान पीठासीन न्यायाधीश अक्सर ऐसे आदेश दे रहे हैं जिसमें सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों को उपस्थित होने और दावों का निपटारा करने का निर्देश दिया गया है। यह संयोग ही है कि एक और मामला जिसमें पीठ के विद्वान पीठासीन न्यायाधीश द्वारा इसी तरह की प्रक्रिया अपनाई गई थी, आज हमारे सामने आया - झील विकास प्राधिकरण, नैनीताल बनाम हीना खान 2010 का सीए नंबर 10087-10090 निर्णय दिनांकित 26.11.2010। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि विद्वान न्यायाधीश का वास्तविक मानना है कि वरिष्ठ अधिकारियों की उपस्थिति की आवश्यकता होने से, वह मामलों में तेजी ला सकते हैं और प्रभावी न्याय प्रदान कर सकते हैं। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है कि न्यायाधीश का उद्देश्य नेक या प्रामाणिक है। न्यायिक औचित्य के सर्वमान्य मानदंडों से परे हुए बिना, उद्देश्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया न्यायसंगत और उचित होनी चाहिए।

7.इस संदर्भ में हम गुजरात राज्य बनाम तुरबाली गुलामहुसैन हिरानी- 2007 (14) एससीसी 94 मामले में इस न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों का उल्लेख कर सकते हैं :

"इस न्यायालय के समक्ष बड़ी संख्या में मामले आए हैं जहां हमने पाया है कि विभिन्न उच्च न्यायालयों के विद्वान न्यायाधीशों ने मुख्य सचिव, सरकार के सचिव (केंद्र और राज्य), पुलिस महानिदेशक, निदेशक-सीबीआई या बीएसएफ या सरकार के अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को तलब किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय के पास इन अधिकारियों को तलब करने की शक्ति है, लेकिन हमारी राय में ऐसा बहुत ही दुर्लभ और असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए जब ऐसा करने के लिए मजबूर करने वाली परिस्थितियां हों। ऐसे तलब किये जाने योग्य आदेशों को नियमित तौर पर हल्के तरीके से तथा बिना विचार किए नहीं दिया जाना चाहिए।

न्यायाधीशों में शील और नम्रता होनी चाहिए।उन्हें यह समझना चाहिए कि किसी बहुत ही दुर्लभ और असाधारण स्थिति को छोड़कर, और वह भी बाध्यकारी कारणों से, किसी वरिष्ठ अधिकारी को बुलाना प्रतिकूल है और इसमें भारी खर्च और संबंधित अधिकारी का बहुमूल्य समय भी शामिल हो सकता है।न्यायपालिका को कार्यपालिका और विधायिका का सम्मान करना चाहिए। न्यायाधीशों को यह महसूस करना चाहिए कि मुख्य सचिव, सरकार, आयुक्त, जिला मजिस्ट्रेट, वरिष्ठ पुलिस अधिकारी आदि अधिकारी बेहद व्यस्त व्यक्ति हैं जो अक्सर सुबह से रात तक काम करते हैं।"

7. तथ्यों ओर परिस्थितियों पर, अधिग्रहण को चुनौती देने वाली एक रिट याचिका से निपटने के दौरान उच्च न्यायालय की खण्डपीठ का प्रमुख सचिव (सार्वजनिक निर्माण विभाग) , प्रमुख सचिव (वित्त) , प्रमुख सचिव (राजस्व) को अलग अलग तिथियों पर उपस्थित होने का अंतरिम निर्देश देना अनुचित है और उसमें हस्तक्षेप किया जा सकता है

7. इसलिए, हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हैं और उच्च न्यायालय से अनुरोध करते है कि गुण दोष के आधार पर अपील का शीघ्र निस्तारण करें । पक्षपात या पूर्वाग्रह की किसी भी धारणा से बचने के लिए, हम उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश से मामले को किसी अन्य पीठ को सौंपने का अनुरोध करते हैं। सभी प्रश्न खुले छोड़ दिए गए हैं ।

अपील अनुमति

यह अनुवाद अनुवादक न्यायिक अधिकारी सुनीता नसवारिया (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।